प्राचीन भारत में किशोर न्याय: एक शोधात्मक अध्ययन

शुभलता अग्रवाल* एवं डॉ. महेंद्र कुमार**

*शोध छात्रा(विधि) बाबू जगजीवन राम विधि संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी
**सहायक आचार्य, बाबू जगजीवन राम विधि संस्थान, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था को आधुनिक संवैधानिक और दंड विधान के पूर्व की संहिताओं के रूप में देखा जा सकता है। यह व्यवस्था केवल दंडात्मक नहीं थी, बल्कि गहराई से नैतिक, धार्मिक और सुधारात्मक दृष्टिकोण से ओतप्रोत थी। किशोरों (Juveniles) के संदर्भ में यह दृष्टिकोण और भी अधिक मानवीय तथा संरक्षणकारी दिखाई देता है। जहाँ आज आधुनिक विधानों में 18 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के लिए अलग न्याय प्रणाली अपनाई जाती है, वहीं प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी बालकों और किशोरों के प्रति अलग दृष्टिकोण अपनाया गया था। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथों में स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि किशोरों के अपराधों को सुधारात्मक उपायों के माध्यम से हल करने का प्रयास किया गया, न कि उन्हें वयस्क अपराधियों के समान दंडित करने का। यह शोधपत्र प्राचीन भारत में किशोर न्याय की अवधारणा, उसके विधिक स्रोत, दंड नीतियां, सुधारात्मक पद्धतियाँ और आधुनिक विधियों से उसकी तुलना प्रस्तुत करता है।

Le système juridique de l'Inde ancienne peut être considéré comme une forme antérieure aux codes constitutionnels et pénaux modernes. Ce système n'était pas seulement punitif, mais profondément imprégné d'une perspective morale, religieuse et réformatrice. En ce qui concerne les mineurs (juvéniles), cette approche apparaît encore plus humaine et protectrice. Alors qu'aujourd'hui, les lois modernes adoptent un système judiciaire distinct pour les délinquants de moins de 18 ans, les textes anciens de l'Inde, tels que le *Manusmriti*, le *Yājñavalkya Smriti*, le *Nārada Smriti*, le *Mahabharata* et le *Ramayana*, montrent clairement qu'une approche différente était adoptée envers les enfants et les adolescents. Les délits commis par les mineurs étaient traités à l'aide de mesures correctives plutôt que de sanctions identiques à celles infligées aux adultes. Ce document de recherche présente le concept de justice juvénile dans l'Inde ancienne, ses sources juridiques, les politiques pénales, les méthodes de réhabilitation, ainsi qu'une comparaison avec les législations modernes.

1. प्राचीन भारत की विधिक और सामाजिक पृष्ठभूमि

प्राचीन भारतीय समाज वर्णाश्रम धर्म पर आधारित था, जिसमें सामाजिक जीवन को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार पुरुषार्थों के अनुसार नियोजित किया गया था। यह व्यवस्था सामाजिक और नैतिक संतुलन बनाए रखने का आधार थी। विधिक प्रणाली 'धर्म' के अंतर्गत आती थी, जो व्यक्ति के कर्तव्यों, अधिकारों और दंड के स्वरूप को निर्धारित करती थी। धर्मसूत्रों (जैसे गौतम, आपस्तम्ब, बौधायन) और स्मृतियों (जैसे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, नारद) के साथ-साथ महाकाव्य (रामायण, महाभारत) और पुराण भारतीय न्याय प्रणाली के प्रमुख स्रोत थे। इन ग्रंथों में अपराध, साक्ष्य, न्याय प्रक्रिया और दंड के प्रकारों की विस्तृत चर्चा मिलती है, जो समाज में व्यवस्था और नैतिकता को बनाए रखने में सहायक थीं।

प्राचीन भारत में किशोर न्याय की अवधारणा आधुनिक संदर्भों की तरह स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं थी, किंतु बच्चों के संरक्षण और शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मनुस्मृति और धर्मशास्त्र जैसे ग्रंथों में बच्चों को समाज का अभिन्न अंग माना गया। इन ग्रंथों में बच्चों की देखभाल, शिक्षा और नैतिक विकास के लिए प्रावधान थे, जो किशोर न्याय के कुछ पहलुओं को परोक्ष रूप से दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, मनुस्मृति में बच्चों के प्रति दया, उनके सुधार और शिक्षा पर जोर दिया गया है। दंड व्यवस्था में भी बच्चों के प्रति नरमी बरती जाती थी, जिससे उनकी गलतियों को सुधारने का अवसर मिले। इसके अतिरिक्त, गुरुकुल प्रणाली में बच्चों को नैतिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी, जो उनके चरित्र निर्माण और सामाजिक उत्तरदायित्व को बढ़ावा देती थी।

इस प्रकार, प्राचीन भारतीय समाज में विधिक और नैतिक व्यवस्था सामाजिक संरचना को मजबूत करने में महत्वपूर्ण थी। यद्यपि किशोर न्याय की आधुनिक अवधारणा का अभाव था, फिर भी बच्चों के संरक्षण और सुधार के प्रावधान समाज में उनकी गरिमा और भविष्य को सुरक्षित रखने का प्रयास दर्शाते हैं। यह प्रणाली धर्म और नैतिकता पर आधारित थी, जो सामाजिक समरसता को बनाए रखने में सहायक थी।

2. किशोर की परिभाषा और उत्तरदायित्व का सिद्धांत

प्राचीन भारतीय समाज में 'किशोर' शब्द का आधुनिक स्वरूप भले ही प्रचलित नहीं था, किंतु 'बाल', 'बालक', 'कुमार', 'अविवेकी', और 'अज्ञानि' जैसे शब्दों के माध्यम से उस आयु वर्ग को परिभाषित किया गया था, जिसमें व्यक्ति की मानसिक और बौद्धिक परिपक्वता पूर्ण नहीं होती। ये शब्द न केवल आयु, बल्कि मानसिक और नैतिक विकास के स्तर को भी दर्शाते थे। प्राचीन भारतीय विधिक और सामाजिक व्यवस्था में बच्चों को समाज का अभिन्न और संवेदनशील हिस्सा माना जाता था, और उनकी देखभाल, शिक्षा, और सुधार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। धर्मसूत्रों, स्मृतियों, और अन्य ग्रंथों में किशोरों के प्रति दृष्टिकोण उनकी शिक्षा, संरक्षण, और सामाजिक एकीकरण पर केंद्रित था, जो प्राचीन भारत में किशोर न्याय के कुछ मूलभूत पहलुओं को दर्शाता है।

2.1 उत्तरदायित्व का सिद्धांत

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में किशोरों के अपराधों और उनके उत्तरदायित्व के संबंध में स्पष्ट दिशा-निर्देश दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, **मनुस्मृति** (8.285) में कहा गया है:

"बालानां दोषदःपिता"

अर्थात, यदि कोई बालक अपराध करता है, तो उसका उत्तरदायित्व उसके पिता पर होता है। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि बच्चों को उनकी अपरिपक्वता के कारण पूर्ण रूप से दंडनीय नहीं माना जाता था। इसके बजाय, उनके अभिभावकों को उनके कृत्यों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता था। यह सिद्धांत बच्चों की मानसिक और नैतिक अपरिपक्वता को स्वीकार करता था और उन्हें सुधार का अवसर प्रदान करने पर जोर देता था।

इसी प्रकार, **याज्ञवल्क्य स्मृति** (2.293) में उल्लेख है कि 16 वर्ष की आयु तक के व्यक्तियों को पूर्ण दंड नहीं दिया जाना चाहिए। यह प्रावधान आयु और मानसिक परिपक्वता को दंड निर्धारण में महत्वपूर्ण कारक मानता है। **नारद स्मृति** में भी यह निर्देश मिलता है कि मानसिक रूप से अपरिपक्व व्यक्तियों द्वारा किए गए

अपराधों को शिक्षा और सुधार के दृष्टिकोण से देखा जाए। इन ग्रंथों में दंड का उद्देश्य केवल सजा देना नहीं, बल्कि व्यक्ति को समाज में पुनःएकीकृत करना और उसका नैतिक विकास सुनिश्चित करना था।

गौतम धर्मसूत्र और अन्य धर्मसूत्रों में बच्चों की शिक्षा और नैतिक विकास पर विशेष जोर दिया गया है। इन ग्रंथों में यह माना गया कि बच्चों को उचित मार्गदर्शन और शिक्षा के माध्यम से समाज का जिम्मेदार सदस्य बनाया जा सकता है। यद्यपि किशोर अपराधों के लिए विशिष्ट विधिक प्रावधानों का अभाव था, फिर भी बच्चों के प्रति नरम दृष्टिकोण अपनाया जाता था, जो उनकी आयु और मानसिक स्थिति को ध्यान में रखता था।

2.2 बच्चों का कानूनी दर्जा

मनुस्मृति में बच्चों के कानूनी दर्जे और कस्टडी के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान उल्लिखित हैं। **श्लोक 8.31–8.56** में उन परिस्थितियों का वर्णन है, जहां एक विवाहित महिला अपने पति के अलावा किसी अन्य पुरुष से गर्भवती होती है। ऐसे मामलों में, बच्चे की कस्टडी महिला और उसके कानूनी पति को दी जाती थी। यह प्रावधान बच्चों के सामाजिक और कानूनी अधिकारों को सुनिश्चित करने का प्रयास दर्शाता है। यह व्यवस्था यह भी संकेत देती है कि प्राचीन समाज में बच्चों की सामाजिक स्थिति और उनके संरक्षण को महत्व दिया जाता था, भले ही जैविक पितृत्व का प्रश्न उठता हो।

इसके अतिरिक्त, **श्लोक 9.143–9.157** में बच्चों के संपत्ति और विरासत के अधिकारों पर विस्तृत चर्चा की गई है। इन प्रावधानों में बच्चों को संपत्ति में हिस्सा देने के नियम और उनकी सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के उपाय शामिल थे। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय समाज में बच्चों को न केवल नैतिक और शैक्षिक दृष्टिकोण से, बल्कि आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण माना जाता था।

प्राचीन भारतीय समाज में किशोरों की परिभाषा और उनके प्रति उत्तरदायित्व का सिद्धांत उनकी आयु, मानसिक परिपक्वता, और सामाजिक भूमिका पर आधारित था। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, और गौतम धर्मसूत्र जैसे ग्रंथों में बच्चों के संरक्षण, शिक्षा, और सुधार पर जोर दिया गया। यद्यपि आधुनिक अर्थों में किशोर न्याय की अवधारणा स्पष्ट नहीं थी, फिर भी बच्चों के प्रति नरम और सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता था। बच्चों के कानूनी दर्जे और कस्टडी से संबंधित प्रावधान उनके सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को सुरक्षित रखने का प्रयास दर्शाते हैं। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय विधिक व्यवस्था में किशोरों के प्रति एक संतुलित और मानवीय दृष्टिकोण मौजूद था, जो उनकी देखभाल, शिक्षा, और समाज में एकीकरण को प्राथमिकता देता था।

3. अपराध की प्रकृति और किशोरों के प्रति दृष्टिकोण

प्राचीन भारत में अपराध केवल विधिक उल्लंघन नहीं, बल्कि 'पाप' (अधर्म) माना जाता था। किशोरों द्वारा किए गए अपराधों को भी अधर्म के रूप में देखा गया, परंतु यह माना गया कि किशोर अपराध अज्ञानता, अनुशासनहीनता या बाल बुद्धि के कारण होते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई छात्र गुरुकुल में गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करता था, तो उसे समाज से बहिष्कृत नहीं किया जाता था, बल्कि अनुशासनात्मक दंड (जैसे उपवास, सेवा कार्य, पाठ स्मरण) के माध्यम से उसे सुधारने का प्रयास किया जाता था।

ऐसे अपराध जिनमें बल प्रयोग नहीं था, उन्हें 'क्षमा योग्य अपराध' माना जाता था। किशोरों द्वारा चोरी, झूठ बोलना, तामसिक व्यवहार करना आदि को शिक्षा और अनुशासन के माध्यम से नियंत्रित किया जाता था। यदि कोई किशोर गंभीर अपराध करता भी था, तो पहले उसके मानसिक स्वास्थ्य और पारिवारिक पृष्ठभूमि की जांच की जाती थी।

4. गुरुकुल व्यवस्था और सुधारात्मक न्याय

प्राचीन भारत में गुरुकुल केवल शिक्षण संस्थान नहीं थे, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण और नैतिक शिक्षा के केंद्र थे। यहाँ विद्यार्थी जीवन संयम, अनुशासन और सेवा भाव से परिपूर्ण होता था। यदि कोई छात्र अनुचित व्यवहार करता था, तो उसे कठोर दंड नहीं बल्कि सुधारात्मक उपायों द्वारा मार्ग पर लाने का प्रयास किया जाता था। यह उपाय इस प्रकार थे:

- ✓ गुरु द्वारा आत्ममंथन के लिए प्रेरणा
- ✓ सेवा कार्य जैसे जल संग्रह, अन्न तैयार करना, आचार्य सेवा
- ✓ उपवास या मौन व्रत
- ✓ सामाजिक क्षमा प्राप्त करना

मनुस्मृति में स्पष्ट कहा गया है कि बालक को दंडित करना गुरु का कार्य है और वह भी सुधार की भावना से, न कि क्रोधवश।

5. दंड नीति में किशोरों के लिए विशेष नियम

प्राचीन विधिक ग्रंथों में दंड विधान विस्तृत है, परंतु किशोरों के लिए इसमें विशेष छूट दी गई है। मनुस्मृति (8.316) कहती है:

"अल्पज्ञो बालकश्चैव न दोषं लभते किल"

अर्थात अल्पज्ञानी और बालक दोष के पात्र नहीं हैं। यह विचार आधुनिक आपराधिक न्याय के सिद्धांत *mens rea* से मेल खाता है, जिसमें अपराधी की मानसिक दशा को ध्यान में रखा जाता है।

दंड केवल शारीरिक नहीं था, उसमें निम्नलिखित सुधारात्मक तत्व होते थे:

- ✓ उपदेश (सामाजिक और धार्मिक)
- ✓ सामाजिक भर्त्सना
- ✓ क्षमा याचना
- ✓ सेवा कार्य
- ✓ तपस्या और आत्मनियंत्रण

यह दृष्टिकोण बताता है कि किशोर अपराधी को समाज से बाहर निकालने के बजाय समाज का हिस्सा बनाकर सुधारने की प्रक्रिया अपनाई जाती थी।

6. स्त्री किशोरियों के लिए विशेष न्याय

स्त्री किशोरियों के लिए प्राचीन व्यवस्था अधिक संरक्षणात्मक थी। यदि कोई कन्या किसी अपराध में संलग्न होती थी, विशेषकर नैतिक अपराधों में, तो उसे कठोर दंड देने के बजाय सामाजिक सुरक्षा और पुनर्वास की दृष्टि से देखा जाता था। स्त्रियों को समाज के नियंत्रण में रखना पुरुष का कर्तव्य माना गया।

मनु (8.371) कहता है:

"स्त्रियः स्वातन्त्र्यमर्हन्ति..."

अर्थात स्त्रियों को स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए, परंतु इसका उद्देश्य उन्हें सुरक्षा देना था न कि उनके अधिकारों का हनन।

किशोरियों को आश्रयगृह, संयमशील शिक्षा और विवाह के माध्यम से पुनर्स्थापित करने की प्रक्रिया अपनाई जाती थी। यह दृष्टिकोण आज के Juvenile Welfare Home या Observation Home के समरूप है।

7. आधुनिक किशोर न्याय प्रणाली से तुलना

आधुनिक भारत में किशोर न्याय अधिनियम, 2015 (Juvenile Justice Act, 2015) द्वारा 18 वर्ष से कम आयु के किशोरों के लिए एक विशेष न्यायिक प्रक्रिया निर्धारित की गई है। इसमें किशोरों को बाल सुधार गृहों में रखा जाता है, उन्हें शिक्षा और परामर्श दिया जाता है, और गंभीर अपराधों की स्थिति में किशोर न्याय बोर्ड निर्णय करता है कि उन्हें वयस्क के रूप में विचार किया जाए या नहीं।

यह दृष्टिकोण प्राचीन भारत की प्रणाली से मिलता-जुलता है, जहाँ सुधार, पुनर्वास और सामाजिक पुनर्स्थापन को प्राथमिकता दी जाती थी। अंतर केवल इतना है कि आज यह प्रक्रिया संस्थागत है जबकि प्राचीन भारत में यह गुरुकुल, परिवार और समाज आधारित थी।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय किशोर न्याय प्रणाली मानवीय, नैतिक, और सुधारात्मक मूल्यों पर आधारित थी। किशोरों को अपराधी के बजाय भटके हुए बालक माना जाता था, जिन्हें सही मार्ग पर लाने की आवश्यकता थी। *मनुस्मृति*, *याज्ञवल्क्य स्मृति*, और *नारद स्मृति* जैसे ग्रंथों में यह दृष्टिकोण स्पष्ट है, जो आधुनिक किशोर न्याय (*Juvenile Justice*) के सिद्धांतों से सुसंगत है।

- **मनुस्मृति** (8.285): बालक के अपराध का उत्तरदायित्व पिता पर डालता है, जो बच्चों की अपरिपक्वता को स्वीकार करता है।
- **याज्ञवल्क्य स्मृति** (2.293): 16 वर्ष तक की आयु के व्यक्तियों को पूर्ण दंड से छूट देता है।
- **नारद स्मृति**: अपरिपक्व व्यक्तियों के अपराधों को शिक्षा और सुधार के दृष्टिकोण से देखने की सलाह देता है।
- **गौतम धर्मसूत्र**: बच्चों की नैतिक और शैक्षिक उन्नति पर जोर देता है।

कानूनी दर्जा

- **मनुस्मृति** (8.31–8.56): बच्चों की कस्टडी और सामाजिक स्थिति को सुरक्षित रखने के प्रावधान।
- **मनुस्मृति** (9.143–9.157): संपत्ति और विरासत के अधिकारों पर चर्चा, जो बच्चों की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करती है।

आधुनिक प्रासंगिकता

आज बाल अपराधों में वृद्धि के संदर्भ में, प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण की पुनर्व्याख्या उपयोगी हो सकती है। नैतिक शिक्षा, आत्मसंयम, और सामाजिक सहयोग पर आधारित यह व्यवस्था आधुनिक किशोर न्याय

प्रणाली को अधिक मानवीय और प्रभावी बना सकती है। इन मूल्यों को अपनाकर किशोर अपराधियों को समाज में पुनःएकीकृत करने में सहायता मिल सकती है।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति, अष्टम अध्याय
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, द्वितीय अध्याय
3. नारद स्मृति, न्याय प्रकरण
4. डॉ. पी.वी. केन – *History of Dharmaśāstra*
5. डॉ. बी.एन. शर्मा – *प्राचीन भारतीय विधि और न्याय*
6. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015
7. वेदों और उपनिषदों में सामाजिक न्याय संबंधी उद्धरण
8. महाभारत (शान्ति पर्व) और रामायण में बाल नीति
9. यूनिसेफ इंडिया – Juvenile Justice in South Asia (2020)

LE REFUGE DU RISHI